

पक्के कांग्रेसी दिलीप कुमार का नेहरू, वाजपेयी, बाल ठाकरे और शरद पवार से कैसा रिश्ता रहा ?



फिल्मी सितारों और फिल्मकारों को उनकी पॉलिटिक्स के आधार पर समझना काफी दिलचस्प होता है. अमिताभ बच्चन की पड़ताल करो तो मुक्तिबोध की पंक्ति 'पार्टनर तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है?' से ही लंबा-चौड़ा लेख खत्म हो सकता है! सुपरस्टार अक्षय कुमार की मौजूदा सरकार समर्थित योजनाओं व प्रोपेगेंडा की तारीफ करने वाली फिल्मों पर नजर डालो तो उनके निजी राजनीतिक रुझान का पता चलता है. वहीं, एक जमाने में हिंदी फिल्मों की कहानियों को सही और गलत के बीच सही-सही फैसला करना सिखाने में बलराज साहनी, राज कपूर और ख्वाजा अहमद अब्बास जैसे वामपंथी रुझान के लेखकों, निर्देशकों व सितारों का बड़ा हाथ रहा था. आज के निर्देशकों में भी कई डेयरिंग फिल्मकार वामपंथी रुझान के माने जाते हैं और विशाल भारद्वाज ने तो 'हैदर' (2014) की रिलीज के वक्त सगर्व कहा भी था कि 'अगर मैं वामपंथी नहीं हूँ तो मैं आर्टिस्ट नहीं हूँ.'

दिलीप कुमार के राजनीतिक रुझान ने भी उनके व्यक्तिगत व सार्वजनिक जीवन पर खासा प्रभाव डाला था. अमिताभ बच्चन, सुनील दत्त और राजेश खन्ना जैसे सितारों की तरह भले ही वे सक्रिय राजनीति का हिस्सा कभी नहीं रहे लेकिन सक्रिय राजनीति हमेशा उनसे जुड़ी रही. वरिष्ठ राजनीतिक पत्रकार रशीद किदवई ने कुछ समय पहले एक किताब लिखी थी जो राजनीति में आने वाले कई मशहूर सितारों के बारे में विस्तार से बात करती है. इसी किताब 'नेता अभिनेता : बॉलीवुड स्टार पावर इन इंडियन पॉलिटिक्स' में एक दिलचस्प अध्याय महानायकों के भी नायक कहलाए जाने वाले दिलीप कुमार के बारे में है.

दिलीप कुमार हमेशा एक पक्के कांग्रेसी रहे. किताब दावा करती है कि उनके पिता और दादा जब अविभाजित हिंदुस्तान के शहर पेशावर में रहते थे (आज का पाकिस्तान) तब दोनों ही कांग्रेस पार्टी के कार्यकर्ता थे. यहां तक कि दिलीप कुमार बनने से पहले नौजवान यूसुफ खान तक को जवाहरलाल नेहरू के धर्मनिरपेक्षता से जुड़े विचार इस कदर पसंद थे कि वे उनकी रैलियों में हिस्सा लिया करते थे. बाद में चलकर रशीद किदवई उदाहरण के साथ यह समझाने की कोशिश करते हैं कि दिलीप कुमार की अनेक फिल्मों में इन्हीं नेहरूवादी विचारों को प्रतिबिंबित करती थीं चाहे वो 'नया दौर' (1957) हो, 'गंगा जमुना' (1961) हो या 'लीडर' (1964). पंडित नेहरू जिस दौर में भारत के प्रधानमंत्री रहे, 1947 से लेकर 1964 तक, उस दौरान दिलीप कुमार ने धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद जैसे नेहरूवादी विचारों को खूब अपनी फिल्मों में जगह दी. पत्रकार वीर सांघवी को कोट करते हुए रशीद किदवई लिखते हैं, 'वे एक सच्चे

राष्ट्रवादी मुसलमान रहे, और बदले में हिंदुस्तान ने उन्हें जीवित रहते हुए ही लेजेंड का खिताब दिया.'

रशीद क़िदवई की किताब दिलीप कुमार की आत्मकथा 'दिलीप कुमार : द सब्सटेंस एंड द शैडो' (2015) से कई जानी-अनजानी जानकारियां इकट्ठा करती है. उन्हीं में से एक जानकारी दिलीप कुमार और पंडित नेहरू की पहली मुलाकात के जिक्र की भी है. 1959 में 'पैगाम' फिल्म की शूटिंग के दौरान प्रधानमंत्री नेहरू सेट पर पहुंचे और जब सभी को लगा कि वे सबसे पहले फिल्म की खूबसूरत हीरोइन वैजयंती माला से मिलेंगे, उन्होंने आगे बढ़कर लाइन में सबसे आखिर में खड़े फिल्म के हीरो दिलीप कुमार के कंधे पर अपना हाथ डाल दिया. 'यूसुफ, मुझे पता चला कि तुम यहां हो और मैंने आने का फैसला कर लिया!'

इस मुलाकात के एक साल बाद दिलीप कुमार को पंडित नेहरू की जरूरत पड़ी, क्योंकि सेंसर बोर्ड उनकी फिल्म 'गंगा जमुना' (1961) को पास नहीं कर रहा था. वजह थी कि फिल्म के आखिर में उनका किरदार मरने से ठीक पहले 'हे राम' बोलता है. सेंसर वालों को आपत्ति थी कि यह गांधी जी के कहे आखिरी शब्द हैं और केवल कोई हिंदू ही इन्हें बोल सकता है. यह न पहली बार था जब दिलीप कुमार को अपने धर्म की वजह से परेशानी उठानी पड़ी और न ही आखिरी. बहरहाल, पंडित नेहरू के दखल के बाद न सिर्फ 'गंगा जमुना' पास कर दी गई बल्कि दिलीप कुमार की बाकी अटकी फिल्में भी आसानी से थियेट्रों तक पहुंचने के लिए सेंसर सर्टिफिकेट हासिल कर सकीं.

अगले ही साल दिलीप कुमार ने पश्चिम बॉम्बे से खड़े होने वाले कांग्रेसी उम्मीदवार के लिए चुनावों में प्रचार किया. फिल्मों में आने के 18 साल बाद अब जाकर उन्होंने पहली बार सार्वजनिक तौर पर खुद को राजनीति से जोड़ा था और फिर तो जैसे यह सिलसिला बिना रुके चलता ही रहा.

हालांकि, रशीद क़िदवई लिखते हैं कि 1999 तक के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस प्रत्याशियों का प्रचार करने के बावजूद दिलीप कुमार को यदा-कदा ही नेताओं के नाम याद रहते थे, और इसीलिए भी उनके राजनीतिक मित्र बेहद सीमित रहे. पंडित नेहरू के प्रति वे हमेशा वफादार रहे और जब भी नेहरू ने उन्हें प्रचार करने के लिए आमंत्रित किया दिलीप कुमार ने कभी न नहीं किया. अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं, 'मैं पंडितजी की बात एक बार में मानता था. उनके प्रति मेरा प्यार और सम्मान वैसा ही था जैसे आगाजी के लिए था.' अपने पिता को दिलीप कुमार आगाजी कहकर सम्बोधित करते थे. इस लिहाज से नेहरू उनके लिए पिता-तुल्य थे.

पक्का कांग्रेसी होने के बावजूद कट्टर हिंदुत्व समर्थक शिव सेना प्रमुख बाल ठाकरे से भी दिलीप कुमार की घनिष्ठता रही. दोनों एक-दूसरे को तब से जानते थे जब बाल ठाकरे अखबारों में मारक कार्टून बनाया करते थे और दिलीप कुमार को उनकी व बाल ठाकरे को दिलीप कुमार की कला पसंद आया करती थी. बाल ठाकरे के निवास मातोश्री में दिलीप कुमार का आना-जाना लगा रहता था और बाल ठाकरे की पत्नी मीना ताई के हाथों से बने सादा भोजन का वे लुत्फ उठाया करते थे.

लेकिन, जैसा कि बाल ठाकरे की फिल्मी हस्तियों से रही दोस्तियों का पैटर्न रहा है, वे एक दफा दिलीप कुमार के भी खिलाफ हो गए. यह तब की बात है जब 1997 में पाकिस्तान सरकार ने दिलीप कुमार को 'निशान-ए-इम्तियाज' से नवाजने का फैसला किया और पाकिस्तान बुलाया. बाल ठाकरे इसके खिलाफ

थे और उन्होंने सार्वजनिक रूप से दिलीप कुमार की आलोचना की. अपने धर्म की वजह से कई बार शक की निगाह से देखे गए दिलीप साहब को – किताब में कई बार तफसील से जिक्र है कि मुसलमान होने पर उन्हें बार-बार संदेह से देखा गया – इस बार यह आलोचना कुछ ज्यादा ही गहरे चुभी. उन्हें यकीन नहीं हुआ कि 30 साल पुराना उनका दोस्त उनकी ईमानदारी और देशभक्ति पर शक कर रहा है. उन्होंने भी सार्वजनिक तौर पर बाल ठाकरे की आलोचना की और पुरस्कार लेने पाकिस्तान चले गए.

कारगिल युद्ध के दौरान फिर यह मसला उठा और बाल ठाकरे ने फिर दिलीप कुमार को निशान-ए-इम्तियाज वापस करने को कहा. दिलीप साहब ने साफ इंकार कर दिया और साफ-साफ कहा कि उन्हें यह पुरस्कार उनके सोशल वर्क के लिए मिला है, गरीबों के लिए काम करने और हिंदुस्तान तथा पाकिस्तान को करीब लाने के लिए मिला है. इस तरह तमाम दबावों के बावजूद पाकिस्तान का यह सर्वोच्च नागरिक सम्मान दिलीप कुमार ने हिंदुस्तान में ही रखा.

जल्द ही दोनों में फिर से दोस्ती हो गई! वैसे ही, जैसे कि बाल ठाकरे की फिल्मी हस्तियों से टूट चुकी दोस्तियों का वापस जुड़ने का भी एक पैटर्न रहा है! दिलीप कुमार ने अपनी आत्मकथा में इसका श्रेय बाल ठाकरे की धर्मपत्नी मीना ताई को दिया है जिनकी गर्मजोशी और मेहमाननवाजी की वजह से दोनों के रिश्तों में कोई खटास नहीं रही. साथ ही उन्होंने मीना ताई को यह श्रेय भी दिया है कि उन्हीं की वजह से बाल ठाकरे जैसा कट्टर हिंदू राष्ट्रवादी नेता जमीन से जुड़ा भी रहा.

निशान-ए-इम्तियाज वाले विवाद के दौरान जिस राजनीतिक शख्सियत ने दिलीप कुमार की सबसे ज्यादा मदद की वह कोई और नहीं बल्कि पक्के कांग्रेसियों की पक्की दुश्मन भाजपा के नेता और पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी थे! इस मसले पर दिलीप साहब ने तब के (1998) प्रधानमंत्री वाजपेयी से सलाह मांगी थी और उन्होंने ही दिलीप कुमार से कहा था कि वे बाल ठाकरे को नजरअंदाज कर यह सम्मान लेने पाकिस्तान जाएं. 'एक आर्टिस्ट राजनीतिक और भौगोलिक सीमाओं में नहीं बंधा होता. आपको यह पुरस्कार मानवीय कार्यों के लिए दिया जा रहा है और हिंदुस्तान-पाकिस्तान के बीच के रिश्तों को सुधारने में आपके द्वारा दिए गए योगदान से सभी परिचित हैं.' ये वाजपेयी साहब के उद्गार थे. आज के सत्ताधारी नेता व मंत्री होते तो दिलीप साहब को हमेशा के लिए पाकिस्तान चले जाने की ही धमकी देते!

दिलीप कुमार की ईमानदारी और मानवीय तबियत आगे भी अटल बिहारी वाजपेयी को उनका मुरीद बनाती रही. रशीद किदवई भरपूर रिसर्च के साथ लिखी गई अपनी किताब में पाकिस्तान के भूतपूर्व विदेश मंत्री खुर्शीद महमूद कसूरी की एक किताब को कोट कर बड़ा ही दिलचस्प वाकया साझा करते हैं. 1999 के कारगिल युद्ध के बाद अटल बिहारी वाजपेयी ने पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज शरीफ को फोन कर अपनी नाराजगी जाहिर की थी और कहा था कि लाहौर में तो आपने हमारा गर्मजोशी से स्वागत किया था लेकिन कारगिल हड़पने की कोशिश करने में कोई वक्त जाया नहीं किया. इसके बाद वाजपेयी साहब ने फरमाया कि वे चाहते हैं कि नवाज शरीफ किसी से बात करें.

वाजपेयी के बगल में बैठे इस 'किसी' ने फिर नवाज शरीफ से कहा, 'मियां साहिब, हमें आपसे ऐसी उम्मीद नहीं थी, क्योंकि आप हमेशा हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच शांति स्थापित करने की

वकालत किया करते थे. मैं आपको बतौर एक हिंदुस्तानी मुसलमान बताना चाहूंगा कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच तनाव होने पर हिंदुस्तानी मुसलमानों की स्थिति जोखिम भरी हो जाती है और उन्हें घर से बाहर निकलने तक में मुश्किल होती है. इस स्थिति को संभालने के लिए प्लीज कुछ कीजिए.' यह मजबूत आवाज यूसुफ खान उर्फ दिलीप कुमार की थी. प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने उन्हें यह जिम्मेदारी सौंपी थी कि वे उनके साथ बैठकर नवाज शरीफ से बात करें और दोनों देशों के बीच उपजे तनाव व शत्रुतापूर्ण माहौल को खत्म करने की कोशिश करें. भाजपाई वाजपेयी 'मुसलमान' दिलीप कुमार पर इस कदर भरोसा करते थे!

शरद पवार से भी दिलीप साहब की मित्रता का किताब में जिक्र है. यह मित्रता उनके जीवन का राजनीतिक चित्र खींचने की कोशिश करने वालों के लिए अहम इसलिए हो जाती है क्योंकि इसी दोस्ती ने दिलीप साहब को उनके जीवन की सबसे मुश्किल विपत्ति से पार पाने में मदद की. महाराष्ट्र के कद्दावर नेता और एनसीपी सुप्रीमो शरद पवार को दिलीप साहब उनके यूथ कांग्रेस के दिनों से जानते थे. पंडित नेहरू से निकटता के चलते वे वकील, ट्रेड यूनियन लीडर तथा कांग्रेसी नेता रजनी पटेल के दोस्त बने थे और उन्हीं की मार्फत शरद पवार से उनकी दोस्ती हुई थी. बाद में चलकर उन्होंने चुनावों में शरद पवार का प्रचार भी किया और इससे यह दोस्ती और गाढ़ी हुई. जब शरद पवार महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बने तब उन्होंने 1980 में दिलीप कुमार को मुंबई का शेरिफ नियुक्त कर दिया. यह ऑफर दिलीप साहब को पहले भी मिल चुका था लेकिन इस बार वे मना नहीं कर पाए.

शरद पवार की उनके जीवन में अहम जरूरत तब पड़ी जब सायरा बानो और उनका वैवाहिक जीवन टूटने की कगार पर आ गया. हुआ यह था कि दिलीप कुमार ने पाकिस्तानी महिला व तीन बच्चों की मां अस्मा रहमान से छिपकर दूसरा निकाह कर लिया था और जब यह खबर 1982 में सार्वजनिक हुई तो उनसे 22 साल छोटी सायरा बानो ने उन्हें छोड़ने का फैसला कर लिया. किताब यह दावा करती है – और बाद में शरद पवार की आत्मकथा 'ऑन माय टर्म्स' में भी इसका उल्लेख है – कि दिलीप कुमार के कहने पर ही शरद पवार और रजनी पटेल ने सायरा व दिलीप के बीच मध्यस्थता की थी और बेहद मुश्किलों के बाद यह शादी बच सकी थी. दिलीप कुमार ने पाकिस्तानी महिला को तलाक दिया था और बे औलाद होना मंजूर किया लेकिन सायरा बानो के बिना रहना नहीं. आज, साथ रहते-रहते दोनों को आधी सदी से ज्यादा का वक्त गुजर चुका है.

राजनीति, सार्वजनिक के अलावा दिलीप कुमार के निजी जीवन में भी बहुत काम आई. सक्रिय राजनीति से वे हमेशा दूर रहे, उसकी आग में अपनी उंगलियां नहीं जलाई, लेकिन देश के अहम सक्रिय राजनेता हमेशा उनके इर्द-गिर्द बने रहे. कोई आंच उन्हें जला न पाए, इसका इंतजाम होता रहा. हमेशा.

साभार- <https://satyagrah.scroll.in/> से